International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

साम्प्रदायिक राजनीति और देश का विभाजन

डॉ० हरमनदीप सिंह, शोधार्थी इतिहास
गुहला–चीका, जिला कैथल, हरियाणा
Email – harmanghuman05300@gmail.com

राष्ट्रीय आंदोलनों के विभिन्न पहलूओं में सबसे महत्त्वपूर्ण था साम्प्रदायिकता का उदय तथा विकास। जिसके कारण स्वतंत्रता के साथ–साथ भारत का विभाजन भी हुआ। भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का जन्म 20वीं शताब्दी में हुआ। साम्प्रदायिकता भारत के लिए अभिशाप बन गई और इससे राष्ट्रीय हितों पर घातक प्रहार हुआ। यदि एक ओर भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटीश राज की देन भी तो भारत के राजनीतिक जीवन में साम्प्रदायिकता भी ब्रिटीश राज्य की ही संतान थी। भारत में कांग्रेस की स्थापना ब्रिटीश साम्राज्यवादियों ने साम्राज्य की रक्षा हेतु कराई थी। परन्तु बाद में कांग्रेस उग्र हो गई तथा राष्ट्रीयता के प्रवाह में बहने लगी। ऐसी परिस्थिति में ब्रिटीश सरकार इस बात की आवश्यकता महसूस करने लगी कि राष्ट्रीयता के विकास में विघ्न उपस्थित करना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से उसने 'फूट डालो और शासन करो' के सिद्धांत को गले लगाया तथा हिन्दू और मुसलमानों में फूट की नींव ड़ाल दी। परिणामस्वरूप साम्प्रदायिकता का विकास हुआ तथा मुस्लिम लीग की स्थापना हुई।[1]

साम्प्रदायिक विचारधारा का जन्म तब होता है जब कुछ व्यक्ति अथवा समुदाय इस धारणा में विश्वास रखते हैं कि समान धर्म के लोगों के सामाजिक, आर्थिक हित भी समान हैं। इसमें धर्म पर आधारित सामाजिक–राजनीतिक समूहों का जन्म होता है। इसका दूसरा चरण तब शुरू होता है जब कोई व्यक्ति अथवा समुदाय साम्प्रदायिक राजनीति में विश्वास करना आरंभ कर देता है, एक ऐसी धारणा में विश्वास कि विभिन्न धार्मिक समुदायों के अपने विशिष्ट हित होते हैं परन्तु इन हितों में सामन्जस्य लाया जा सकता है। तीसरी अवस्था तब आती है जब इन धार्मिक मतभेदों को धर्म निरपेक्ष संसारिक मतभेदों में बदल दिया जाता है तथा इन परस्पर हितों में कोई तालमेल नहीं देखा जाता। अपने इस चरण

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

में एक विशिष्ट राष्ट्र अथवा राष्ट्र अथवा दो–राष्ट्र जैसे सिद्धांतों का प्रचार किया जाता है।[2] साम्प्रदायिकता के विकास में हम तीन अवस्थाओं का वर्णन करते हैं। प्रथम अवस्था थोड़ी नर्म होती है जिसमे समान धर्म वाले लोगों के भौतिक हित भी समान होते हैं, द्वितीय अवस्था थोड़ी संतुलित होती है जिसमें विभिन्न धर्मों के लोगों के हित असमान परंतु सामंजस्यकारी होते हैं। तृतीय अवस्था उग्रवादी होती है जिसमें विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के हित विरोधाभासी होते हैं और एक–दूसरे के विरुद्ध घृणा और ड़र पैदा करते हैं।[3]

अंग्रेजों के आगमन के पूर्व मुसलमान ही भारत के शासक थे। अंग्रेजों द्वारा वे पराजित हुए और अंग्रेजों ने भारत पर अधिपत्य कायम कर लिया। अतः अंग्रेजों से मुसलमानों का असंतुष्ट होना स्वाभाविक था। अंग्रेज लोग भी मुसलमानों को ही अपना शत्रु मानते थे। अतः उनको उन्होंने तंग करना आरम्भ कर दिया। सर्वप्रथम अंग्रेजों ने हिन्दुओं का पक्ष लिया और उच्च पदों से मुसलमानों को निकाल दिया। उनको गिराने के लिए बहुत सारे प्रयास किए गए। 1857 ई० की क्रांति के बाद वे मुसलमानों के ओर भी खिलाफ हो गए क्योंकि अंग्रेजों का मानना था कि गदर में मुसलमानों का ही हाथ था। इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ हिन्दुओं ने अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति की अच्छी बातों को अपनाना शुरू किया वहीं दूसरी ओर मुसलमान इससे दूर भागते गए। मुसलमानों का पतन तीव्र गति के साथ हो रहा था। परन्तु बाद में अंग्रेजों ने अपनी नीति में परिवर्तन कर लिया। भारतीय राष्ट्रीय जागरण में हिन्दु लोग ही नेतृत्व कर रहे थे। वास्तव में यह ब्रिटीश राज्य के लिए प्रत्यक्ष खतरा था। अतः अंग्रेजों ने मुसलमानों का पक्ष लेना आरंभ कर दिया तथा हिन्दुओं का विरोध। अंग्रेजों ने 'फूट ड़ालो और शासन करो' की रणनीति अपनाई। अंग्रेजों ने मुसलमानों को प्रोत्साहित कर उन्हें कांग्रेस के आंदोलन से पृथक करने में ब्रिटीश साम्राज्यवाद का हित समझा। अंग्रेजों ने मुसलमानों के साथ मित्रता आरंभ कर दी।[4]

अखिल भारतीय स्तर पर साम्प्रदायिकता पहली बार 1880 तथा 1890 के दशकों में देखने को मिली। जहाँ हिन्दू बुद्धिजीवी वर्ग में राष्ट्रवाद की भावना तेजी से पनप रही थी, वहीं मुस्लिम समुदाय इससे अलग–थलग ही रहा। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुस्लिम संगठन

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

गिने–चुने थे। परंतु मुस्लिम दृष्टिकोण में परिवर्तन देखा जा सकता था। नवाब अब्दुल लतीफ ने 1863ई० में एक मुहम्मदीन लिट्रेरी एण्ड़ साईंटिफिक सोसाईटी ऑफ कलकत्ता की स्थापना की। 1878ई० में सईद अमीर अली तथा सईद अमीर हुसैन ने नेशनल मुहम्मदीन एसोसिएशन की स्थापना की। जिसका लक्ष्य सभी न्यायोचित या संवैधानिक तरीकों से भारतीय मुसलमानों के कल्याण को प्रोत्साहन देना था। इसने अंग्रेजी शिक्षा की प्रशंसा की तथा अंग्रेजी शासन के प्रति अपनी निष्ठा को प्रकट किया। अमीर अली ने सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के कांग्रेस में शामिल होने के न्यौते को ठुकरा दिया, क्योंकि उनका मानना था कि मुसलमानों के लिए एक अलग संगठन होना आवश्यक है। हिन्दू प्रभुत्त्व का ड़र उनके दिमाग में बुरी तरह से छाया हुआ था। सर विलियम हंटर ने 1871 ई० में **'दि इण्ड़ियन मुसलमान्स'** नामक पुस्तक लिखकर अंग्रेजों और मुसलमानों में मित्रता की चर्चा की। अंग्रेज–मुस्लिम मित्रता को बढ़ाने में अहमद खाँ और प्रिंसिपल बेक ने महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। बेक के कार्य साम्प्रदायिकता के विकास में अत्याधिक सहायक सिद्ध हुए। बेक ने मुसलमानों को अंग्रेजों के पक्ष में जीतने के संबंध में तथा उन्हें कांग्रेस से दूर रखने के महत्त्वपूर्ण कार्य किए। सर सैय्यद अहमद खाँ ने एक नए युग का सूत्रपात किया। मुस्लिम पुनर्जागरण का जनक भी सर सैय्यद अहमद खाँ को कहा जाता है। सर सैय्यद अहमद खाँ एक महान् शिक्षा शास्त्री तथा समाज सुधारक थे, किंतु राजनीतिक क्षेत्र में वे रूढ़िवादी तथा निष्ठावान व्यक्ति थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पहले सैय्यद अहमद खाँ हिन्दू–मुसलमानों में सांझेपन पर काफी बल देते थे। पन्तु धीरे–धीरे उनमें ये विचार आने लगे कि भारतीय समाज विभिन्न परस्पर विरोधी समुदायों का जमघट है, जिन्हें एक सर्वोच्च शक्ति की तानाशाही इकट्ठा रख सकती है। पहले यह मुगलों द्वारा किया जा रहा था और अब यह ब्रिटेन की महारानी कर रही है। जो भारतीय समाज के विभिन्न विशिष्ट सामाजिक समुदायों पर राज कर रही है। मुसलमान पूर्व शासक वर्ग है, अतः इस वर्तमान ब्रिटीश साम्राज्य की शक्ति एवं सत्ता में वह विशेषाधिकारी सम्मान का हकदार है। परंतु इसके लिए मुसलमान समुदाय को स्वयं को शिक्षित करना आवश्यक है जो उन्हें औपनिवेशिक भारत में स्थापित नई संस्थाओं में हक जमाने के लिए सशक्त कर सके। सर सैय्यद अहमद खाँ ने

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

उर्दू में एक मासिक पत्रिका **'तहजीकुल अखलाक'** का प्रकाशन शुरू किया। उनका विचार था कि भारत के मुसलमानों का कल्याण इसी में है कि वे पश्चिमी शिक्षा और विज्ञान का लाभ उठाए। उन्होंने स्पष्टतः कहा, **"इस्लामी पुस्ताकालयों की सारी मजहबी किताबें बेकार हैं।"**[5] 1857 की क्रांति में भारतीय मुसलमानों को निर्दोष साबित करने के लिए **'दि लॉयल मोहम्मदन्ज् ऑफ इंड़िया'** नामक पत्रिका का प्रकाशन कर अपने विचार दिए। बाइबल का अनुवाद फारसी में करके दोनों धर्मवलम्बियों के पारस्परिक मतभेदों का अंत करने का प्रयत्न किया। 1875 ई० में सर सैय्यद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में मौहम्मड़न एंग्लो ऑरियण्टल कॉलेज की स्थापना की। यह महाविद्यालय सन् 1890 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के रूप में विकसित किया गया। अलीगढ़ आंदोलन का उद्देश्य मुसलमानों में पाश्चात्य शिक्षा का विकास करना था। उस संदर्भ में यह भी ध्यान रखा गया कि इस्लाम धर्म के प्रति निष्ठा में भी कोई कमी न आए। सर सैय्यद अहमद खाँ ने मुस्लिम राजनीति को एक नया मोड़ दिया, जो हिन्दू विरोधी हो गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को एक हिन्दू संगठन कहा जाने लगा। सर सैय्यद अहमद खाँ को भय था कि बहुसंख्यक समुदाय अल्पसंख्यक समुदाय के हितों की अवहेलना करेगा। सर सैय्यद अहमद खाँ और उनके अनुयायी सदैव साम्प्रदायिकता का विष उगलते रहे। उन्होंने अपने भाषणों और रचनाओं में बार–बार इस बात का जिक्र किया कि हिन्दू और मुसलमान राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक परम्पराओं में एक–दूसरे से भिन्न हैं। आरंभ से ही राष्ट्रीय कांग्रेस की निंदा की जाने लगी।[6]

कांग्रेस की अधिकांश हिन्दू नेता इस तथ्य को मानने को तैयार नही थे कि कांग्रेस हिन्दुओं का संगठन है, वे तो इसका द्वार सभी समुदायों के लिए खुला समझते थे। 1886 ई० में इलाहाबाद में कांग्रेस अधिवेशन के मंच से बोलते हुए शेख राज हुसैन खाँ ने बतलाया कि मुसलमान कांग्रेस के विरोधी नहीं हैं बल्कि अंग्रेज ही कांग्रेस के विरोधी हैं, किन्तु हकीकत यह है कि अधिकांश मुसलमान कांग्रेस विरोधी थे। 1885 ई० से 1905 ई० तक कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने वाले मुसलमानों की संख्या 15% ही थी। 1886 ई० में सर सैय्यद अहमद खाँ ने वार्षिक मुस्लिम शैक्षणिक सम्मेलन की स्थापना की। इसमें मुख्य रूप से

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

मुसलमानों के शैक्षणिक और आम मामलों के बारे में विचार–विमर्श करना था तथापि यह मुसलमानों के बीच राजनीतिक विचारों का मंच बन गया। सर सैय्यद अहमद खाँ जीवनपर्यन्त कांग्रेस के विरोधी बने रहे तथा 1898 ई० में उनकी मृत्यु के पश्चात् नवाब मोशिन उन मुल्क उनके पद चिह्नों पर चलते रहे। कांग्रेस का जो विरोध था वह बाद में हिन्दू विरोध में परिणत हो गया।[7]

साम्प्रदायिक राजनीति के इतिहास में तथा देश के विभाजन में पहला पड़ाव मुस्लिम लीग की स्थापना को माना जाता है। मुस्लिम लीग की स्थापना 30 दिसम्बर 1906 को ढ़ाका में नवाब आगा खाँ ने की। अब मुस्लिम लीग के मंच से कांग्रेस का विरोध किया जाने लगा। ब्रिटीश सरकार ने भी मुस्लिम लीग को बढ़ावा दिया। औपनिवेशिक सरकार तथा मुस्लिम पृथकतावादी विशिष्ट वर्ग ने मिलकर 1909 में पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के रूप में एक शक्तिशाली साम्प्रदायिक यंत्र की रचना की। मार्ले मिन्टों सुधारों ने भारतीय मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र तथा प्रतिनिधि व्यवस्था का प्रावधान किया। इसने कुछ पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की रचना की जिसमें केवल मुस्लिम उम्मीदवार ही चुनाव लड़ेंगे और केवल मुसलमान ही वोट देंगे। इस तरह भारत के संवैधानिक तंत्र में ब्रिटीश सरकार ने साम्प्रदायिक सिद्धांत का समावेश किया। यह विधेयक इसलिए लाया गया था ताकि मुसलमानों को राष्ट्रीय आंदोलन से अलग कर उसे कमज़ोर किया जाए। यह अधिनियम अंग्रेजों की 'फूट ड़ालो और राज करो' की नीति का उदाहरण था।[8]

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद रौलट एक्ट के विरोध तथा खिलाफत और असहयोग आंदोलन के दौरान राष्ट्रवादी धारा ओर मजबूत हुई तथा हिन्दू–मुस्लिम एकता के नारे लगने लगे। **'हिन्दू मुस्लिम की जय'** की हवा पूरे देश में बहने लगी। किंतु इसमें एक कमजोरी भी समाहित थी। खिलाफत आंदोलन के समर्थकों की राजनीतिक चेतना आंशिक रूप से राजनीतिक रही और यह पूर्णतया धर्म–निरपेक्ष न हो सकी। इस प्रकार आने वाले समय में साम्प्रदायिकता के लिए प्रवेश का मार्ग खुल गया। फरवरी 1922 में असहयोग आंदोलन वापिस ले लिया गया। जिससे लोगों में निराशा की भावना फैली और साम्प्रदायिकता ने अपना वीभत्स चेहरा अवसर पाते ही ऊँचा कर लिया। 1923 के बाद देश में बार–बार

साम्प्रदायिक दंगे हुए और साम्प्रदायिक भावनाओं का प्रसार हुआ। पुराने साम्प्रदायिक संगठनों के मुरझाए हुए बिरवे लहलहाने लगे, कुछ नए भी बने।[9]

हिन्दू महासभा ने भी साम्प्रदायिकता को बढ़ाने में कार्य किया। सन् 1915 में मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में प्रयाग में हिन्दू महासभा की स्थापना हुई। 1916 ई० में अंबिका चरण मजूमदार की अध्यक्षता में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। लखनऊ में कांग्रेस ने मुस्लिम लीग से समझौता किया, जिसके कारण सभी प्रांतों में मुसलमानों को विशेष अधिकार और संरक्षण प्राप्त हुआ। हिन्दू महासभा ने 1917 ई० में हरिद्वार में महाराजा नंदी कासिम बाजार की अध्यक्षता में अपना अधिवेशन करके कांग्रेस मुस्लिम लीग समझौते तथा चेम्सफोर्ड़ योजना का तीव्र विरोध किया। 1922–23 में हिन्दू महासभा को जागृत किया गया। लाला लाजपत राय, एन.सी. केलकर जैसे राष्ट्रवादी नेता हिन्दू महासभा के सदस्य बन गए तथा हिन्दू एकता का प्रचार करने लगे। मुसलमानों की '**तन्जीम**' तथा **'तबलीग'** का जवाब आर्य समाजियों ने **'ꣷ ाुद्धि'**तथा '**संगठन**' से दिया। 1926 में हिन्दू महासभा ने चुनावों में भाग लेने का फैसला किया और एक राजनीतिक संस्था बन गई। 1930 के दशक में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकराल रूप धारण करने के पश्चात् हिन्दू महासभा वी.ड़ी. सावरकर जैसे चरमपंथी नेताओं के हाथों में आ गई। समय–समय पर लिखी गई टिप्पणियों जैसे बाद में जो '**हिन्दूत्व'** के नाम से प्रकाशित हुई, में सावरकर ने भारत में रहने वाले सभी सम्प्रदायों के विरुद्ध केवल हिन्दू सम्प्रदाय पर आधारित राष्ट्रीयता की धारणा स्पष्ट की। उसने कहा कि भारतीय उपमहाद्वीप में केवल हिन्दू अथवा हिन्दू विचारों को ही प्राथमिकता मिलनी चाहिए। उसने धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को नकार दिया तथा 1928 ई० में अपने धार्मिक सहयोगियों से अनुरोध किया कि वे कांग्रेस का बहिष्कार करें। 1937 ई० में हिन्दू महासभा के अधिवेशन में सावरकर ने कहा कि 'भारत की एक एकात्मवादी तथा समरूप राष्ट्र के रूप में कल्पना नहीं की जा सकती। यह वास्तव में दो राष्ट्र हैं – एक हिन्दू राष्ट्र तथा दूसरा मुस्लिम राष्ट्र।'[10]

इस दौर में साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति कई दंगों के माध्यम से हुई। सितंबर 1924 में उत्तर पश्चिमी प्रांत के कोहाट शहर में जबरदस्त हिन्दू विरोधी दंगे हुए, जिसमें 155 लोगों

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

की हत्या हो गई। अप्रैल तथा जुलाई 1926 के बीच कलकत्ता में कई साम्प्रदायिक फसाद हुए जिसमें 138 लोगों की हत्या हो गई। इसी वर्ष ढ़ाका, पटना, दिल्ली तथा रावलपिंड़ी में कई जगहों पर दंगे हुए। 1923 से 1927 के मध्य संयुक्त प्रांत में 19 साम्प्रदायिक दंगे हुए। कुल मिलाकर 1922–1927 के के बीच 112 बार साम्प्रदायिक दंगे हुए। साम्प्रदायिक दंगे हिन्दू–मुस्लिम विभाजन का बाहरी रूप था। असली मुद्दा राजनीतिक था। अपने समुदाय के भविष्य, आकांक्षाओं तथा आर्थिक सुरक्षा को लेकर पैदा होने वाली शंकाओं से दोनों समाज चिंतित थे। जब विभिन्न राजनीतिक दलों ने साईमन कमीशन का बहिष्कार किया तथा एक सर्वदलीय संविधान बनाने के लिए तैयार हो गए तो हिन्दू–मुस्लिम एकता के आसार एक बार फिर नज़र आने लगे। लेकिन अनेकों साम्प्रदायिक मुद्दों को निपटाने के लिए अनेकों अखिल भारतीय सम्मेलन कराए। किन्तु कोई भी सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसी प्रकार साम्प्रदायिक नेता '**नेहरू रिपोर्ट**' पर सहमत न हो सके। इन प्रयासों का एक सार्थक लक्षण यह बना कि गाँधी और नेहरू जैसे राष्ट्रवादी नेताओं को इस तथ्य अधिकारिक स्पष्ट होता गया कि सम्प्रदायवाद के विरूद्ध संघर्ष किया जाना चाहिए; क्योंकि इसका सरल समाधान संभव नहीं है। जिन्ना ने इसे '**रास्ते अलग–अलग होना**' **(Parting of Ways)** का नाम दिया। परिणामस्वरूप सभी मुस्लिम साम्प्रदायिक गुट इक्ट्ठे हो गए तथा उन्होंने एक प्रपत्र तैयार किया जिसे जिन्ना का **'14 सूत्रीय कार्यक्रम'** का नाम दिया गया। यह प्रपत्र भविष्य में होने वाले सभी समझौतों का आधार बन गया। 1930–34 ई० के साईमन कमीशन विरोधी आंदोलन तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन ने साम्प्रदायिक शक्तियों को एक बार फिर से निष्क्रिय कर दिया, हालांकि चौथे दशक के आरंभ में हुए गोलमेज सम्मेलन के दौरान साम्प्रदायिक नेताओं को प्रकाश में आने का मौका मिला। 1932 के कम्यूनल अवार्ड़ ने मुस्लिम लीग की लगभग सभी माँगे मान ली। यह केवल समय की विड़म्बना थी कि 1930 के दशक में जहाँ कांग्रेस एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रवादी शक्ति के रूप में उभर चुकी थी, वहाँ साम्प्रदायिकता ने एक अलग राष्ट्र तथा अलग राज्य की माँग के रूप में विकराल रूप धारण कर लिया था।[11]

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

1930 के बाद मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग का एक गुट भारत में स्वतंत्र मुस्लिम राज्य की स्थापना की कल्पना करने लग गया था। इसके लिए वैचारिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि अलीगढ़ आंदोलन, मुस्लिम लीग की स्थापना तथा मिन्टो मार्ले सुधारों में मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों जैसी गतिविधियों ने पहले ही तैयार कर दी थी। 1930 में प्रसिद्ध उर्दू शायर मोहम्मद इकबाल ने मुस्लिम लीग के इलाहाबाद अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए कहा कि '**मेरी इच्छा है कि पंजाब, उत्तर–पि चमी सीमा प्रांत, सिन्ध तथा बलोचिस्तान को मिलाकर एक राज्य बना दिया जाए।**' इकबाल ने भारत के अंदर एक मुस्लिम राज्य की माँग उठाई। अलग मुस्लिम राज्य का विचार गोलमेज कांफ्रेंस के समय रहमत अली के नेतृत्व में इंग्लैंड़ में कुछ मुस्लिम विद्यार्थियों ने भी दिया था। रहमत अली ने मुस्लिम प्रतिनिधिमंड़ल के सामने पंजाब, उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत या अफगान प्रांत, कश्मीर, सिंध तथा बलूचिस्तान को मिलाकर मुसलमानों के लिए पृथक स्वदेश की योजना पेश की। इस नए मुस्लिम राज्य को उसने पाकिस्तान (उपरोक्त चार प्रांतों के पहले अक्षर तथा आखरी प्रांत के आखरी तीन अक्षर) का नाम दिया। रहमत अली के प्रस्ताव को मुस्लिम प्रतिनिधिमंड़ल ने कोई खास महत्त्व नहीं दिया। चौधरी रहमत अली ने अपनी योजना के प्रचार के लिए 1933 में पाकिस्तान नेशनल मूवमेंट की स्थापना की। परन्तु धीरे–धीरे पाकिस्तान का विचार तूल पकड़ने लग गया। 1930ई० में ब्रिटीश सरकार की शह पर चौधरी मोहम्मद अली ने ब्रिटेन में बैठकर पाकिस्तान का नक्शा बनाया और इसे भारत भेजा। 1935 ई० के बाद जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग एक बार फिर सुसंगठित तथा सुदृढ़ हो गई, जिन्ना ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी मुस्लिम वर्ग को लीग के झंड़े के तले इक्ट्ठा किया तथा इस मृतप्रायः संस्था में एक बार पुनः जान फूँक दी। 1937 के प्रांतीय चुनावों के बाद उभरे राजनीतिक वातावरण में साम्प्रदायिकता ने विकराल रूप धारण कर लिया। इन चुनावों में कांग्रेस भारत की प्रधान राजनीतिक शक्ति के रूप में सामने आई तथा अन्य निहित स्वार्थों के विभिन्न राजनीतिक दलों को बड़ी पराजय का सामना करना पड़ा। इन चुनावों में कांग्रेस को 1585 में से 717 स्थानों पर विजय मिली, पाँच प्रांतों में स्पष्ट बहुमत मिला तथा बंबई में भी यह बहुमत के साथ पास थी। दूसरी ओर मुस्लिम

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

लीग 483 पृथक निर्वाचन क्षेत्रों में केवल 109 पर विजयी रही। उत्तरी–पश्चिमी सीमा प्रांत में उसे एक भी सीट नहीं मिली, पंजाब की 84 आरक्षित सीटों में केवल 2 सीटें मिली तथा सिंध में 33 आरक्षित सीटों में केवल 3 सीटें ही प्राप्त हुई। बंगाल में फजलुल हक तथा पंजाब में यूनियनिस्ट पार्टी सफल रही। इन चुनावों में मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक पार्टियां भी भली–भांति न चली, सामाजिक–आर्थिक निहित स्वार्थ तथा प्रतिक्रियावादी, औपनिवेशिक अधिकारी वर्ग तथा साम्प्रदायिक शक्तियों ने अब भीषण रूप ले लिया। अपने आर्थिक तथा राजनीतिक कार्यक्रम और नीतियों में तेजी से आमूल परिवर्तन की दिशा अख्तियार करते हुए राष्ट्रीय आंदोलन का विरोध करने में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण साम्प्रदायिक भावना की बाजी लगा दी। अब एक ही राष्ट्र के अंदर इकट्ठे रहने का विचार परस्पर समुदायों में घृणा, ड़र, शत्रुता तथा पृथकतावाद में परिवर्तित होने लगा। हिन्दुओं और मुसलमानों के हित परस्पर विरोधी तथा स्थाई रूप से विवादास्पद घोषित कर दिए गए। ऐसे वातावरण में पाकिस्तान के विचार को मूर्त रूप देना अनिवार्य लगने लगा, क्योंकि साम्प्रदायिकता के चरणों में केवल पृथक्कता का चरण पूरा होना रह गया था।[12]

सन् 1940 तक '**पाकिस्तान**' मुस्लिम लीग की विचारधारा का केन्द्र बिन्दु बन गया। इसके ठीक विपरीत कांग्रेस थी जो अखण्ड़ भारत की शुरू से ही समर्थक थी। अतः उसने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग का कड़ा विरोध किया। अतः दोनों में प्रत्यक्ष विरोध स्थापित हो गया। द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू होने के बाद कांग्रेस ने सभी प्रांतीय विधानसभाओं के मंत्रीमंड़लों से 1939 में त्यागपत्र दे दिया। भारतीय मुसलमानों ने उससे लाभ उठाने के लिए मि० जिन्ना के नेतृत्व में 22 दिसम्बर 1939 ई० को '**मुक्ति दिवस**' मनाया। वे कांग्रेस शासन के अत्याचारों से मुक्ति की माँग करने लगे। 24 मार्च 1940 को लीग के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान का प्रस्ताव पास किया गया।[13] लीग ने मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को मिलाकर पाकिस्तान बनाने की माँग रखी। अप्रैल 1941 के लीग के अलीगढ़ अधिवेशन में जिन्ना ने कहा कि, "पाकिस्तान न केवल लिया जा सकता है बल्कि अगर आप इस देश में इस्लाम को पूरी तरह से खत्म होने से रोकना चाहते हैं तो इसका एकमात्र उपाय पाकिस्तान की स्थापना ही हो सकता है।"

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, खास तौर पर 1942 के बाद साम्प्रदायिक शक्तियों को तेजी से बढ़ने का अवसर मिला। ऐसा मुख्य रूप से इसलिए भी हुआ क्योंकि राष्ट्रवादी नेता जेल में थे और राष्ट्रीयता आंदोलन निष्क्रिय था। ब्रिटीश सरकार ने भी साम्प्रदायिकता के विचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1942 ई० में क्रिप्स अपनी योजना लेकर भारत आया तो उसने भारत में एक संघ राज्य की स्थापना की योजना प्रस्तुत की। इस योजना में प्रांतो को सम्मिलित होने या नहीं होने का अधिकार प्रदान किया। कांग्रेस ने इस योजना को स्वीकार नही किया, मुस्लिम लीग ने भी इसे स्वीकार नहीं किया, क्योंकि इसमें पाकिस्तान की माँग स्वीकृत नहीं की गई थी। 9 सितम्बर से 27 सितम्बर 1944 के बीच हुई वार्ता में गाँधी ने राजगोपालचारी फार्मूला के आधार पर पाकिस्तान प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, परंतु लाहौर प्रस्ताव जो '**द्धि राश्ट्र**' सिद्धान्त पर आधारित था, को नहीं माना। जिन्ना ने इस प्रस्ताव पर बल दिया कि गाँधी **'द्धि राश्ट्र'** के सिद्धांत को माने तथा हिन्दू एवं मुस्लिम अलग राष्ट्रों को मान्यता दे। परिणामस्वरूप बातचीत असफल हो गई। 1946 के चुनावों ने हिन्दू–मुस्लिम दोनों समुदायों के भाग्य पर मोहर लगा दी। 1946 के चुनावों में जहाँ छोटे राजनीतिक दलों का सफाया हो गया वहीं राजनीतिक परिदृश्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग तक ही सीमित हो गया, जो पहले से ही कहीं अधिक विरोधी थे। कांग्रेस ने साम्राज्य गैर मुस्लिम सीटों में से 90% सीटें जीतीं, जबकि मुस्लिम लीग ने प्रांतों में अधिकांश मुस्लिम सीटों (87%) पर जीत हासिल की। फिर भी अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने मुस्लिम भारत के एकमात्र प्रतिनिधि होने के अपने दावे की पुष्टि की। 12 अगस्त 1946 को वायसराय के कहने पर नेहरू ने अंतरिम सरकार बनाई। नेहरू ने जिन्ना को भी शामिल करने की कोशिश की लेकिन वो नहीं माने। जिन्ना ने सीधी कार्यवाही दिवस मनाने का आदेश दिया, जिससे देश में साम्प्रदायिक दंगे फैल गए। आने वाले महीनों में बंगाल, बिहार तथा संयुक्त प्रांत में जमकर साम्प्रदायिक दंगे हुए जो बाद में दिल्ली तथा पंजाब तक फैल गए। ऐसा प्रतीत हुआ कि सम्पूर्ण देश साम्प्रदायिकता की आग की लपटों पर झुलस रहा है और देश का विभाजन ही एक विकल्प हो सकता था और वह था लाखों की संख्या में मासूम लोगों की एक साथ हत्या। राष्ट्रीयतावादी नेतृत्व

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 13 Issue 04 April- 2023
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

तथा भारतीय जन समुदाय को पिछली अर्धशताब्दी के दौरान साम्प्रदायिता के प्रादुर्भाव विकास से सफलतापूर्वक निपटने में अपनी असफलताओं के अवश्यभावी परिणामों का सामना करना पड़ा। इस तरह लार्ड़ माऊंटबेटन योजना के आधार पर ब्रिटीश संसद ने **'भारतीय स्वतंत्रता अधिनियन'** बनाकर अगस्त 1947 में दो स्वतंत्र राष्ट्र भारत और पाकिस्तान में बांटकर दो जातियों (कोमों) की सांझेदारी को गहरी ठेस पहुँचाई।[14]

संदर्भ ग्रन्थ सूचि :–

1. डॉ० विपिन बिहारी सिन्हा, आधुनिक भारत का इतिहास, अनुपम प्रकाशन, पटना, 1994, पृष्ठ 443
2. डॉ० सत्या एम राय, भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990, पृष्ठ 590
3. आर. सी. वरमानी, भारत में उपनिवेशवाद तथा राष्ट्रवाद, गीतांजलि पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ 326
4. डॉ० विपिन बिहारी सिन्हा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 444
5. आर. सी. वरमानी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 330
6. डॉ० विपिन बिहारी सिन्हा, पूर्वोक्त, पृष्ठ 445
7. उपरोक्त, पृष्ठ 448
8. ताराचन्द, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग–III, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2007, पृष्ठ 356
9. बिपिन चन्द्र तथा मृदुला मुखर्जी, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990, पृष्ठ 406
10. आर. सी. वरमानी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 334
11. डॉ० सत्या एम राय, पूर्वोक्त, पृष्ठ 603
12. आर. सी. वरमानी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 341–342
13. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृष्ठ 398
14. डॉ० सत्या एम राय, पूर्वोक्त, पृष्ठ 603